'कोंकणी साहित्य का आधुनिक काल : उपन्यास के संदर्भ में'

डॉ. चंद्रलेखा डिसूजा
रीडर, कोंकणी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा.

भारतीय उपन्यास विधा पर जब सोचते हैं तब हमें पता चलता हैं कि भारतीय साहित्य में, समाज में, जीवन में, ब्रिटिशों के आगमन के बाद, आधुनिक काल का, नए विचारों का उदय हुआ। विद्वानों का मानना है कि इसी समय में, हमारे देश में नई नई साहित्यिक विधाओं का प्रारंभ हुआ। इसके साथ साथ हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि हमारे देश में बहुत सारी भाषाएँ बोली जाती हैं, उन सबका तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि हमारी सब भाषाओं का विकास एक सा नहीं हुआ। अपने अपने प्रदेशों में अपने अपने इतिहास में तथा सामाजिक परिस्थितियों में, हमारी भाषाएँ अलग अलग विकासात्मक रूपों में पनप रही हैं। परिणाम स्वरूप उसकी गतिविधियाँ भी अलग अलग समय पर होती द्रष्टव्य होती हैं। विद्वानों का मानना है कि भारत देश में बंगला और मराठी भाषा में उपन्यास का उदय हुआ। इसका कारण यह माना गया कि अंग्रेजों का आधिपत्य सबसे पहले बंगाल में ही स्थापित हुआ। हिंदी प्रदेशों में वह सब से बाद में स्थापित हुआ। इसीलिए हिंदी में उपन्यास का जन्म भी बहुत बाद में हुआ।

भारत देश का ही एक हिस्सा, गोवा प्रदेश पुर्तुगालियों के शासन में ४५१ साल तक रहा फिर भी यहां की कोंकणी भाषा में, साहित्यिक गतिविधियाँ विकासात्मक रूप में उतनी विकसित क्यों नहीं रही? यह एक अनुसंधान का विषय हो सकता है। शायद एक कारण यह भी हो सकता है कि शुरू शुरू में यहां के शासकों ने, यहां की भाषा पर पाबंदी लगाकर पुर्तुगाली भाषा को शासकीय भाषा बना दिया। पर बाद में यहीं पर तुलनात्मक शब्दकोश भी बनाएँ गए। पर वह सब कुछ कोंकणी भाषा के विकास को साहित्यिक आधुनिक गतिविधियों तक नहीं ले जा पाए। यहां पर आधुनिक यूरोपीय भाषा परिवार में पुर्तुगाली भाषा का तुलनात्मक क्या स्थान था उस पर भी सोचा जा सकता है। अंग्रेजी के कारण बंगाली और मराठी आगे बढ़ी पर पुर्तुगाली भाषा के कारण गोवा की कोंकणी भाषा उतनी आगे क्यों नहीं बढ़ पाई इसका उत्तर भी वहीं खोजना पड़ेगा। इसके और कारण भी हो सकते हैं पर इनको नज़र अंदाज करके देखें तो गोवा प्रदेश की, नागरी लिपि में लिखित, कोंकणी में १९९१ से लेकर सन २००८ तक सिर्फ १४ उपन्यास मिलते हैं जिसे यहां पर कादंबरी या नवलकथा भी कहा जाता है। वैसे रोमन लिपि की कोंकणी में भी उपन्यास परंपरा है। जहां तक कन्नड़ लिपि का सवाल है वहां उनके विद्वानों का मानना है कि उपन्यास परंपरा इसी लिपि में सबसे ज्यादा पनपी है। पर हमें अपना ध्यान नागरी लिपि की कोंकणी की ओर केंद्रित करना है क्यों कि उसी को साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त हुई है। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय और राजकीय शासन सबके लिए नागरी लिपि की कोंकणी को ही अपनाया गया है। वैसे ध्यान में रखनेवाली बात यह भी है कि कोंकणी भाषा अलग अलग लिपि

के कारण बिखरी पड़ी है। उन सबको इकठ्ठा करके उन्हें नागरी लिपि में लिप्यंतरण करके अथवा गोवा की कोंकणी में कोंकणीकरण करके लाया जा सकता है। तभी गोवा प्रदेश की कोंकणी भाषा और समृद्ध हो सकती है। जब तक कोंकणी भाषी यह कार्य नहीं कर पाते तब तक रोमन, कन्नड़ और मलयाळम कोंकणी लिपि के इतिहास अलग अलग बिखरे ही रहेंगे। कोंकणी भाषा का साहित्यिक इतिहास तैयार करने में इन्हें संजोना होगा। पर जब तक यह बात 'कोंकणी प्रेमी' की समझ में नहीं आती तब तक गोवा की धरती पर रचा गया, नागरी लिपि का साहित्य पढ़कर उन्हीं पर ही लेख लिखने पड़ेंगे। इस लेख की यह मर्यादा भी है और मजबूरी भी। सन २००५ तक जो साहित्य गोवा में रचा गया है वह अपने ही अक्षांशों और रेखांशों में घूम रहा है। इनमें से उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं। आरंभ में शणै गोंयबाब की लिखी कृति 'संवसार बुट्टी' को नवलकथा माना गया। (कोंकणी विश्वकोश खंड - १ पृ. ५०८) बाद में

रवीन्द्र केळेकार - 'तुळशी' १९७१
लक्ष्मणराव सरदेसाय - 'पापडां कवळ्यो' १९७९
तुकाराम शेट - 'पाखलो' १९७८
एन शिवदास - 'नखलामी' १९८७
शांता खांडेपारकर- 'अंतरपाट' १९८३
पुंडलीक नायक - 'बांबर', 'अच्छेव' १९७७
रमेश वेळुस्कर - 'मोनी व्यथा' १९७५
हेमा नायक - 'निर्बळा', 'मुक्ती' १९९२

इनमें से किसी भी कृति को उपन्यास कहना उचित नहीं। तुळशी, अच्छेव दोनों कृतियाँ विषय और वस्तु की दृष्टि से उपन्यास बन सकते थे पर वैसा हो नहीं पाया। संवसार बुट्टी जो कि सन् १९३० में प्रकाशित हुई पर वह भी उपन्यास नहीं है। वास्तव में 'क्रिस्तांव घराबो' (रोमी लिपि) जो कि १९०५ में प्रकाशित हुई थी उसे उपन्यास माना जा सकता है पर उसमें भी धार्मिक उपदेश, अच्छा मनुष्य बनने की बजाय अच्छा क्रिश्चियन कैसे बने उसीका उपदेश है। कथ्य और शिल्प दोनों को देखें तो सब कुछ कच्चा कच्चा ही है। खैर इस धागे को छोड़कर आगे बढ़ते हैं। वैसे हिंदी में ही गोवा की धरती पर लिखे तीन उपन्यास मिलते हैं -

अस्तंगता - कृष्णचंद शर्मा 'भिक्खु' १९६६
और मांडवी बहती रही - प्रो. अरविंद पांडेय १९७७
सम्-वाद - चंद्रलेखा, २००४

भारतीय परिदृश्य के बारे में अगर सोचा जाए तो बंगला में १८५७ में, मराठी में १८५७ में, गुजराती में १८६६, तामिळ में १८७६, उड़िया में १८८०, मलयाळम में १८८७, कन्नड़ में १८९९....हिंदी में पहला उपन्यास १८८२ में मिलता है। कोंकणी में जैसे उपरोक्त लिखा गया है १९०५ में रोमी लिपि में मिलता है। कोंकणी कन्नड़ लिपि में ज्योकी सांतान आल्वारीस रचित 'आंजेलं कृति' १९५० में प्रकाशित हुई। जब तक उसका लिप्यंतरण नागरी लिपि की कोंकणी में नहीं होता तब तक उसके बारे में लिखा नहीं जा सकता। वैसे इस लेखक ने कन्नड़ लिपि की कोंकणी में ५० उपन्यास लिखें हैं। आशा करें कि कन्नड़ लिपि का यह खज़ाना नागरी लिपि की कोंकणी समृद्ध करेगा।

अब देखते हैं नागरी लिपि की कोंकणी के उपन्यासों की सूची -

कार्मेलीन - दामोदर मावजो, १९८१, पृ. २००
अंजनी - एच. रत्नाकर राव, १९९४, पृ. १८०
काळी गंगा - महाबळेश्वर सैल, १९९६, पृ. २८०
भोगदंड - हेमा नायक, १९९७, पृ. २०२
पाशाण कळी - ज्योती कुंकळकार, १९९८, पृ. १७५.
शक्तिपात - अवधूत कुडतडकार, २०००, पृ. १९६
अदृश्ट माती - महाबळेश्वर सैल, १९९७, पृ. १४८
युग सांवार - महाबळेश्वर सैल, २००४, पृ. ४२३
वादळ आनी वारें - आंतोनियु पैरेरा, २००४, पृ. २३७ (रोमी लिपि में १९७९ में)

पॉको - नं. ध. बोरकार, २००४, पृ. ३१०
दिका - देविदास कदम, २००४, पृ. २८०
घणार घाय - अशोक कामत, २००५, पृ. ४००
खोल खोल मुळां - महाबळेश्वर सैल, २००५, पृ. २२४
गांठवल - देविदास कदम, २००६, पृ. १८४
समर्पण - नं. ध. बोरकार, २००७, पृ. १९४

कार्मेलीन - समाज के विविध अनुभवों, मान्यताओं, विविध जीवन मूल्यों, परंपरागत विचार, आदर्श, मर्यादा इन सब के साथ कृति आकार लेती है। साहित्यकार इन सबको कितनी सफलता से व्यक्त कर पाता है, वहीं पर विवेचना का विषय बनता है। गोवा की धरती को, यहां के प्रश्नों को उजागर करनेवाले उपन्यासकार दामोदर मावज़ो के कोंकणी उपन्यास को साहित्य अकादमी पुरस्कार, गोवा कला अकादमी तथा कोंकणी भाषा मंडल पुरस्कार मिलें हैं। यह एक ऐसी औरत की कहानी है जो अपनी बेटी बेलिंदा के सुनहले भविष्य की कामना में तिल-तिल कर जलती है। एक शराबी, जुआरी, गैर जिम्मेदार पति और पिता। जो अपने उत्तरदायित्व निभाने में नाकामयाब रहा है। पत्नी उसके लिए एक मशीन है, जब चाहा ऑन किया, ऑफ किया। अपने मानसिक संघर्ष में कार्मेलीन जूझती रहती है। पाप-पुण्य, कलंक-मुक्ति, संघर्ष समन्वय में वह खपती रहती है। उपन्यास के अंत तक उसका यही रूप जिंदा रहता है, सिर्फ माँ का रूप। बेटी बेलिंदा जब पैसे कमाने के लिए कुवैत जाने का विचार सुनाती है, तब यही माँ का रूप बेटी को थप्पड़ मारकर वहां जाने से रोकता है, यहीं पर उपन्यास समाप्त होता है। क्रिश्चियन परिवार अपनी संस्कृति में चित्रित हुआ है।

दामोदर मावज़ो के लिए उनके उपन्यास का स्त्रोत सेकन्डरी सोर्स ऑफ इनफरमेशन है। अपनी दुकानदारी के व्यवसाय में उन्हें ऐसी जानकारी मिलना सहज है। लेखक खुद इन बातों का ज़िक्र कर चुके हैं। शायद इसी के कारण संस्कृतिकरण के संकट से, संकरण हुआ उसे आउटसायडर होकर, इनसायडर की बातों को मूल्यों को ऊपरी तौर पर ही चित्रित कर पाए हैं। उनमें संकरण के बाद ही देशजवा या संस्कृतिकरण की गहनता नहीं आ पाई। शायद इसिलिए यह कृति एकालापी बन गई है। संकर से संकरण, संकरणात्मक उससे भी आगे जाकर हमारे देश के संगीत में जैसे अलग अलग समय पर, अलग अलग रागों का मिश्रण हुआ है, अलग अलग घराने बने हैं, उसके मिश्रणात्मक संकरण की भूमिका तक भी यह कृति पहुंच नहीं पाई। मिनाक्षी मुखर्जी जैसी तुलनाकार कहती हैं कि हमारे देश के उपन्यास साहित्य में, उसके विकास में क्रिश्चियनों का योगदान कितना है, उस पर अध्ययन होना चाहिए। डॉ. पाटिल जैसे तुलनाकार कहते हैं कि हमारे देश में हमारे ब्राह्मण लेखकों ने क्रिश्चियन उपन्यासों में कितना योगदान दिया है, उस पर सोचना भी आवश्यक है।[२] आज हमारे जीवन में जो कार्निव्हलिकरण हो चुका है, हो रहा है, जिसे हमारी फिल्में, टी.वी. सीरियल, गानों के एल्बम, नाटक, संगीत आदि में व्यक्त हो रहा है, उसे कैच करना और साहित्य में निरूपित करना भी आवश्यक लग रहा है। साहित्य में केवल 'क्लास' ही क्यों हो? 'मास' भी तो उतना ही महत्वपूर्ण है। कार्मेलीन के 'क्लास' ने 'मास' को सिर्फ दिखाया ही नहीं पर 'नीचा दिखाने' का प्रयत्न किया है। उसके कार्निव्हलीकरण तक तो हम अभी सोच ही नहीं पाए।

'अंजनी' उपन्यास के लेखक एच. रत्नाकर राव है। इसमें 'अंजनी' के जीवन की कहानी है। कॉलेज में पढ़ते हुए, मेंगलोर के लड़के से, जो कि गोवा के बैंक में मेनेजर हैं, उम्र में उससे बड़ा है, उससे अंजनी को प्यार हो जाता है। मातापिता की रज़ामंदी से दोनों की शादी भी हो जाती है। शादी के बाद अंजनी मेंगलोरीयन कोंकणी भाषा सिख लेती है। अम्मा के साथ फ्रेंच भाषा के शब्द भी आत्मसात

कर लेती हैं। नौकरी करने के लिए मॉडेलिंग करनेकी बात सोची। यहीं से अंजनी और पति रघू के बीच में विचारों की असमानता प्रकट होने लगी। अंत में अंजनी को पति का घर छोड़ना पड़ा। अपने कार्य में वह आगे ही बढ़ती रही। अपने व्यवसाय में आगे बढ़ते हुए फेनिक्स कंपनी के मालिक सेटलवाड से उसकी भेंट होती है। अंजनी तूफानों से टकराती हुई अपनी सफलता प्राप्त करती है। मुंबई में रहते हुए अंजनी की कोंकणी में मराठी, हिंदी भाषा भी घुलने लगती है। जनार्दन गौरीश नेवरेंकार अर्थात जॉन उसके प्यार में पागल भी होता है। उसकी भी 'ट्रायांक पब्लिसिटी' कंपनी है। जनार्दन अर्थात जना या जॉन के अंदर के गुणों को अंजनी पहचान ने लगती है। लेखक ने यहां पर एक सुंदर संस्कृत सुभाषित लिखा हैं -

"अमंप्रम् अक्षरं नास्ति। नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्यो पुरूषो नास्ति। योजकस्तप्र दुर्लभः।"[३]

अर्थात जिस अक्षर का उपयोग न हो, ऐसा कोई अक्षर नहीं है। जिस मूल का उपयोग औषधि के रूप में न हो सके ऐसा कोई मूल नहीं है। मनुष्य में भी जिसका उपयोग न हो ऐसा कोई मनुष्य नहीं है। सब से मुश्किल बात होती है वह यह कि किस मनुष्य का उपयोग कहां किया जा सकता है उसको उपयोग में लानेवाला मनुष्य मिलना ही दुर्लभ होता है।

अंजनी 'जना' की सृजनशीलता को सही मोड़ देती है। उसे पहचानती है, और उजागर करने में सहयोग देती है। पालक पिता सेटलवाड की सीख पर जनार्दन से विवाह करती है। गोवा की धरती पर आकर दोनों प्रकृति में खो जाते हैं। माता-पिता बनकर अपनी बेटी के साथ खुश रहती है। घर से बाहर काम करनेवाली औरतों की घर और व्यवसाय संभाल सकने की संतुलित कथा इस उपन्यास में व्यक्त हुई है।

'काळी गंगा' के लेखक महाबळेश्वर सैल हैं। इनकी कोंकणी भाषा में कारवार प्रदेश की मिट्टी की गंध है। अपने प्रदेश के लोगों की कहानी, उसी प्रदेश की संस्कृति, समाज, आचार, विचार, उसकी परंपरा उसी में प्रतीत होता नयापन, बदलते संदर्भों में व्यक्त करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। मूलतः दो बहनों की कथा जिनके नाम हैं मंजूळा और सुमन। माँ का जब देहांत हुआ उस समय बड़ी बहन मंजूळा की उम्र थी नौ साल की और सुमन थी सिर्फ तीन माह की। वैसे देखा जाए तो मंजूळा भी बच्ची ही है पर माँ की मृत्यु के बाद बड़ी बहन होने के नाते जिम्मेदारी स्वरूप माँ का रूप धारण कर लेती है। पिता का खयाल, घर का काम, बाहर का व्यवहार, समाजाचार और छोटी बहन सुमन की पूरी देखभाल मंजूळा के व्यक्तित्व का हिस्सा ही बन जाते हैं। लेखक इन्हीं दो बहनों के माध्यम से 'काळी गंगा' उपन्यास में अन्य पात्रों को चित्रित करते जाते हैं। 'काळी गंगा' नदी, जो कि दोपहर में सूर्य की धूप में चांदी की तरह चमकती है वही शाम की ओर घनी रात के अंधेरे में काजल को लेकर बहती नज़र आती है। 'खारगे' गांव तक तो वह शांति से बहती है पर 'शिद्दर' गांव तक आते आते ही वह विकराल रूप धारण कर लेती है। दो द्वीप बनाते हुए वह धारा कभी नृत्य करती हुई तो कभी रात के अंधेरे में नागीन की तरह बल खाती हुई और भी विकराल लगने लगती है। समय बितता जाता है। मंजूळा की शादी हो जाती है तब सुमन समझदारी के साथ घर का कारोबार संभाल लेती है। मंजूळा के रहते हुए सुमन ने पढ़ाई भी की थी। उस दौरान उसका एक मित्र था गोविंद। उसीके साथ वह बचपन से यौवन में भी कदम रखती है। पड़ोस में ही सुमित्राचाची भी रहती है। वैसे तो गांव में सब मिलजुलकर रहते हैं पर जब मंजूळा की शादी हो जाती है, पांच साल में पिता गणेश की मृत्यु हो जाती है। ससुराल में फौजी पति के साथ मंजूळा दो बच्चों की माँ बन जाती है। पति फ़ौज में चला जाता है। घर का और खेती का

काम करते करते वह बूढ़े ससुर की सेवा भी करती है पर कृषकाया ज्यादा समय नहीं बच पाती और उसका देहांत हो जाता है। बच्चे सुमन मौसी के पास आकर रहने लगते हैं। अकेली सुमन को सगे संबंधी अपने अपने तरीके से नोचने लगते हैं। जोतने के लिए खेत लेकर उसे निगल जाते हैं। सुमन जब बची हुई ज़मीन पर खेत जोतने लगती है तो सब गांववाले विरोध करने लगते हैं। गोविंद अपनी बालसखी की मदद करता है पर उसकी सखी को असमयही बड़ी बहन के बच्चों की माँ के रूप में देखकर परेशान हो जाता है। सुमन और गोविंद के मामा को एवम् बड़े भाइयों को यह पसंद नहीं है। मामा बेऔलाद है और गोविंद को दत्तक लेना चाहते हैं इसीलिए धन के लालच में बड़े भाई भी चाहते हैं कि गोविंद मामा की इच्छा कें विरूद्ध न जाए। सुमन का खयाल छोड़ दे। पर गोविंद को यह सब पसंद नहीं है। जब गोविंद के बड़े भाई ज़बरदस्ती गोविंद को ले जाते हैं तो काली नदी को पार करते समय मंझधार में पहुंचते ही वह पानी में छलांग लगा देता है। सुमन को जब पता लगता है तो कौमार्य अवस्था में ही वैधव्य स्वीकार कर लेती है। उसका अंतिम वाक्य है - "गोविंद मैं तो तुम्हारे साथ जीवन बिताकर सुहागन की मृत्यु चाहती थी पर मेरे नसीब में कुंआरी विधवा बनकर जीना लिखा था।" पृ.२८०. [४]यही पर उपन्यास समाप्त होता है।

'काळी गंगा' अर्थात कारवार प्रदेश की नदी काळी-काली-और उस प्रदेश के लिए वह 'गंगा' है इतना ही नहीं पर काळी गंगा है। यह गंगा काली क्यों है? इसका कोई उत्तर नहीं है। शायद बहुत गहन होने के कारण, वह काली दिखती है। मनुष्य, समाज, संस्कृति नदी के आसपास पनपते हैं। जो नदी पालती पोसती है वह सैलाब आने पर विकराल रूप धारण कर लेती है और खेत, खलिहान, घर, पेड़, पौधे सब उखाड़कर अपने साथ बहा ले जाती है। बचता सिर्फ दलदल। सड़ाँघ। लगता है जैसे धरती ने खुली समाधि ले ली है। सैलाब के बाद नदी फिर अपने पट में बहने लगती है। डेढ़ दो साल में गांव फिर अपना रूप धरने लगता है। मानवीय संस्कृति फिर उसीके तट पर संवरने लगती है। काळी गंगा में गांव संस्कृति उत्सवों में भी निखरती रहती है जिसमें लोकगीत महत्वपूर्ण होते हैं। 'धालो' नाम के उत्सव में यह बंया होती है -

'रामनाथा देवा तुका दंडवत शो, दंडवत शो,
मल्लकार्जूना देवा तुका दंडवत शो, दंडवत शो,
नरशिंवा देवा तुका दंडवत शो, दंडवत शो
- पृ. ४७

(सब देवों को दंडवत् किया जा रहा है।) उसी तरह -

तुळसायवंते भयणी गे, चक्रायवंत तुजी भयणी गे,
नमन तुका पयलीं गे - पृ. ४७

गांव की सुहागन औरतें मिलकर यह उत्सव मनाती हैं जिसमें देवी को नमन किया जाता है। 'भयणी' मतलब दोनो बहने हैं जिन्हें औरतें नमन करती हैं।

जिस तरह महाबळेश्वर सैल कारवार की कोंकणी में लोककला दर्शाते हैं उसी तरह 'अंजनी' कादंबरी में एच. रत्नाकर राव माँ के मुख से आल्ल्य (लोरी) लल्लाबाय कोंकणी, हिंदी, मराठी में रखते हैं। गोवा की कोंकणी में इन तीनों भाषाओं के साथ साथ पुर्तुगाली भाषा का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण है। इस बात का जिक्र लेखक कादंबरी के प्रारंभ में ही करते हैं। मुंबई, गोवा के बीच में घूमते हुए अंजनी का कथानक विस्तृत फलक पर चलता है जबकि 'काळी गंगा' का कथानक कारवार-गोवा के बीच में घूमते हुए 'अंजनी' जैसा विस्तृत हो नहीं पाता। फिर भी सैल अपने समय में गोवा का इतिहास चित्रित करने में सफल हुए हैं। १९६२ में चीन के साथ हमारा युद्ध और गोवा-मुक्ति बाद कारवार और गोवा का संबंध किस तरह बढ़ा नौकरी की तलाश में गोवा आना या फिर मंजूळा और सुमन के पिताजी को गोवा की मेंटल हॉस्पिटल में सारवार के लिए लाया

जाता है तब यहां की जुआरी नदी और कारवार की काळी नदी की तुलना के साथ कारवार की कोंकणी-कन्नड़ भाषा के प्रभाव से-गोवा की कोंकणी भी अपनी खसलत में प्रवाहित है का चित्रण दर्शाती है। कोंकणी उपन्यास साहित्य में इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

अब तक के तीनों उपन्यास नारी पर केंन्द्रित थे जिसे पुरूष रचनाकारों ने चित्रित किया था। पर अब अर्थात १९९७ में और १९९८ में क्रम से 'भोगदंड' और 'पाशाणकळी' (पाषाणकली) हेमा नायक और ज्योती कुंकळकार की रचनाएँ स्त्री द्वारा, स्त्री की समस्या या स्त्री दृष्टि की समस्या लेकर कोंकणी उपन्यास साहित्य में व्यक्त होती हैं।

'भोगदंड' - कार्मेलीन की तरह ही भोगदंड में थी 'क्लास' द्वारा 'मास' को नीचा दिखाने की या चित्रित करने की एकालापी कृति बन गई है। हेमा नायक जिस गांव की स्थापना करती है उस गांव की समस्या तो असली है पर उस गांव की सामाजिक-सांस्कृतिक लेन-देन गोवा के संदर्भ में, गोवा की धरती पर जो सामाजिक संस्कृति पनप चुकी है उसके 'कार्निव्हलीकरण' तक नहीं पहुंच पाई। 'अंजनी' में अपने समाज की कथा में लेखक एच. रत्नाकर राव इन धागों को बुनने में ज्यादा सफल हुए हैं। हेमा नायक की कृति 'भोगदंड' इस अर्थ में दूसरे समाज के संकीर्ण दायरे में घूमती रहती है। मैंने पहले ही लिखा है कि 'उस स्थापित गांव की समस्या असली है' - वह इस अर्थ में कि गांव में आर्थिक समस्या सुलझाने गांव के लडके गोवा के बाहर कुवैत, बेरिन या अखाती देशों में जाते हैं। 'कार्मेलीन' कादंबरी में कार्मेलीन जैसी औरतें जाती हैं तो भोगदंड में उसी तरह 'लेज़ली' को जाना पड़ता है। 'लेजली' इस गांव का सादा सीधा लड़का है जो गिटार बजाकर अपनी बेकारी का दुख हल्का करता है। "मेरे प्रिय गांववासी। हराभरा बाग़ कुम्हला रहा है रूपयों के अंबार पर मेरा कलेजा जलता है। बाज़ार में बैठकर जैसे लेज़ली अपने भाइयों से प्रश्न पूछ रहा है कि धन के मोह में अंधे होकर उस कुँए में छलांग लगाकर परदेश जानेवालों के गांव धन की रेलपेल होते हुए भी गांववालों के कलेजों को जलाती हैं। फॉरेन के कपड़े पहनकर, इत्र लगाकर 'गांव के बाज़ार में ज्यादातर औरतें ही-जवान, बूढ़ी-आती हैं क्यों कि गांव के लड़के तो 'दिनार' या 'रियाल' कमाने बाहर गए हैं। पर पूरे गाव में जो कि एक द्वीप है टापू है उसमें सिर्फ क्रिश्चियन लोग ही रहते हैं। और यहीं पर ही इस टापू की सामाजिक, सांस्कृतिक पहचान पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। समाज कोई भी हो आर्थिक समस्या सुलझाने सिर्फ क्रिश्चियन ही बाहर जाते हैं ऐसा नहीं है। किसी भी समाज में यह समस्या हो सकती है तो उस 'स्थापित गांव' के 'भोगदंड' पर सामाजिक, सांस्कृतिक समासों के संदर्भों पर सोचना जरूरी हो जाता है। इन संदर्भों को छोड़कर गांव की समस्या पर सोचें तो लेज़ली जो गाना गा रहा है उसमें तथ्य भी है और दर्द भी है। पांचसौ परिवार के इस क्रिश्चियन गांव में रोमन केथॉलिक लोगों की संख्या ज्यादा है। रुपयों की रेलपेल पूरे गांव में फैली है। यहां हिंदुओं के घर गिनेचुने ही हैं। प्रसंग नहीं तो कोई एक दूसरे के घर जाता ही नहीं। कथा क्रिश्चियन परिवारों में ही चक्कर काटती रहती है। छोटे से गांव में तीन बैंक हैं उनमें अच्छी खासी जमापूंजी भी है। बैंकों में ड्राफ्ट आते रहते हैं, हुंडी लेकर एजंट आते हैं। गांववालों को बीस के ऊपर गिनती नहीं आती पर कमाई लाखों करोड़ों में आती है। एस.एस.सी. पास होकर ही गांव का युवावर्ग डॉलर, दिनार, रियाल कमाने की योजना बनाता है। शिक्षा के नाम पर इतना ही काफी है। लेज़ली इसमें एक अपवाद है। वह बाहर जाकर कमाना नहीं चाहता पर गांव में रहकर कमा भी नहीं रहा। हररोज़ सुबह बाजार के चौराहे पर गिटार बजाकर 'कांतार' मतलब गाना गाता है। उसकी माँ आंतोनेत चाहती है कि उसका बेटा भी

बाहर जाए और डॉलर या दिनार कमाए।

लेज़ली गांव छोड़कर जाना नहीं चाहता। अपनी ही पड़ोसन फिलोमेना के घर में जो नज़ारा दिखाई देता है उससे वह खुश नहीं है। रोज रात को फिलोमेना अपने दोस्तों को पार्टी के नाम पर बुलाती है, स्वच्छंदी वातावरण में स्वेच्छाचार होता रहता है। सामाजिक पार्टी के सामाजिक तौरे तरीके होते हैं। पर यहां तो अनाचार ही पनपता है। पति बाहर है तो पत्नियों गुलछर्रे उड़ा रही हैं और पत्नी बाहर है तो पति दूसरी लड़कियों के साथ मस्त हैं। कैसा है यह जीवन? रुपया है पर उसकी सही हिफ़ाजत नहीं। परिवार हैं पर उसकी पारिवारिकता पर प्रश्नर्थ चिन्ह लग गया है। सुख के साधन हैं पर शांति नहीं। लेखिका शायद 'दूसरे' समाज के बारे में यहीं पर धोखे की घंटी बजाना चाहती हैं। इस समाज का यह केन्सर पूरे गांव में पसर चुका है। रचनाकार का यह विश्व द्वितीय स्तर का अनुभव है। 'मैं' उस समाज से कहीं बाहर है। रचनाकार के संवेदन कहीं से भी प्राप्त हो सकते हैं पर अगर इस स्थापित गांव में अगर पाप्र गीता, अमर, व्यंकटेश, सुलताना, हमीद होते तब भी गांव का वातावरण वही होता जो अब है। अगर जीवन में सिर्फ 'भोग' ही है, कर्तव्य, त्याग, जिम्मेदारी नहीं है तो उसका 'दंड' चुकाना ही पड़ता है। चाहे वह समाज किसी भी जाति या धर्म का हो उसकी नियति वही होती जो 'भोगदंड' की है।

लेज़ली माँ के सपनों को पूरा करने जेमा के साथ शादी करके उसे माँ के पास छोड़कर रुपए कमाने बाहर जाता है। फिलोमेना की कहानी अब जेमा द्वारा भी दोहराई जाती है। प्रेम किसी और से और शादी किसी और से। शादी के बाद भी जेमा और उसका प्रेमी मिलते रहते हैं। माँ आंतोनेत इसका विरोध करती है पर नतीजा कुछ नहीं निकलता। जेमा कहती है मेरा प्यार राबीन है और रुपया लेज़ली है। उसीके रुपयों से दोनों घर भी बनवाते हैं और जेमा लेज़ली का घर छोड़कर नए घर में रहने भी चली जाती है। एक पति के रूप में कभी लेज़ली जेमा पर अपना हक्क नहीं जताता। वह बस अंधा प्यार करता है। कुवैत से वापस आने पर वह अपने रुपयों के बलपर बना घर उसीमें बेगाना बन जाता है। अपनी शादी की अंगूठी वही टेबल पर रखकर वह वापस अपने पुराने मकान में चला जाता है। बूढ़ी आंतोनेत बेटे के दुख में ही मर जाती है। और लेज़ली की हालत -

आज शनिवार है। बैंक का आधा दिन। लेज़ली अपनी पासबुक लेकर आता है। कैशियर देसाय कहते हैं उसके खाते में सिर्फ पाच रुपए बचे हैं। लेज़ली अपना खाता बंद करवाकर पांच रुपए ले जाता है। गिटार के तार ठीक करवाता है और चबूतरे पर जाकर कांतार करता है - गाना गाता है-

मेरे प्रिय भाईयो,
तमाशा देखो रुपयों का
गुम हो गए सब अंधेरों में,
अपने और परायों के।
मेरे प्रिय भाईयो,
विधि का फरमान देखो अदृष्ट
दंड के रूप में मिला दुख
और किसीको मिला सुख।

आर्थिक और मानवीय मूल्यों के बिखराव में उस स्थापित गांव के लोग भोग रहे हैं भोगदंड। 'पाशाणकळी' अनुष्का की कहानी है। बिना प्यार के लेज़ली को भोगदंड मिलता है तो अनुष्का पाशाणकळी-पाषाणकली-बन जाती है। मनुष्य और प्यार एक दूसरे की आवश्यकता है। बिना प्यार के उसे पत्थर बनते देर नहीं लगती। अनुष्का के माता-पिता के पास धन-दौलत की कमी नहीं है, पर प्यार के मामले में वे कंगाल हैं। अपनी अपनी दुनिया में मिस्टर एंड मिसेस ऋषिकेश शर्मा, अनुष्का, उसकी छोटी बहन कश्मीरा और घर का नौकर रामेश्वर भैया। दिल्ली छोडकर जब अनुष्का गोवा आती है तो मौसी सीमा, मौसा मयूर, इनकी बेटी डॉली। इनके

परिवार में काम करती यमुनाबाई। गोवा में नौकरी करते हुए ऑफिस में काम करनेवाले लोग। इनमें रोहित एक ऐसा पात्र है जो अनुष्का को चाहता है। पर अनुष्का का प्यार तो मयूर है। दिल्ली से निकलते समय रामेश्वर भैया लाख समझाते हैं कि माता-पिता की गैरहाजिरी में मत जाओ पर अनुष्का बस निकल पड़ती है। स्टेशन पर एजंट से मिसेस तनेजा के नाम का टिकट खरीदती है मिस्टर तनेजा भी जाली नाम से ही सफर करता है। ट्रेन में बैठते ही मिसेस तनेजा यानि की अनुष्का की यात्रा भूतकाल में घूमते हुए, भागते वर्तमान की गति को पकड़ने की कोशिश में उलझती रहती है। घर से बाहर तो आई पर कोई ठोस कार्यक्रम उसके पास है ही नहीं। बहरहाल उपन्यास में, रेलवे की पटरी पर जीवन की पटरी का तानाबाना जुड़ता जाता है। पापा, मम्मा और छोटी बहन कश्मीरा के व्यवहार से वह खुश नहीं रह पाती। चारों एक-दूसरे से जैसे अजनबी हैं। जहां रुपया पैसा ही, हर चीज का मापदंड हो वहाँ भावना कोई मायने नहीं रखती। बेटी स्वेटर बनाती है पापा के लिए, पर वह दे दिया जाता है रामेश्वर भैया को। इस घर में कुत्ते के पीछे बीस हजार का खर्च करने का स्टेटस सिंबोल है। पार्टी देने में बड़प्पन है। अनु. की सहेली निवेदिता को कोई नहीं पूछता। पापा अच्छे उद्योगपति तो बने पर अच्छे मनुष्य नहीं बन पाए। (पृ.२३) ६

अनुष्का की समस्या में छोटी बहन कश्मीरा भी उतनी ही जिम्मेवार है। उसे बड़ी बहन बेकवर्ड लगती है। फॉरवर्ड विचारोंवाली बहन जब गर्भवती बन जाती है तो मम्मा कहती हैं - "गर्भवती होने तक यह लड़की क्या करती थी? इतने सारे उपाय हैं एक भी करते नहीं. बना?"-पृ.३०- अर्थात शादी से पहले शारीरिक संबंध तो रखे जा सकते हैं पर गर्भवती बनना जरूरी नहीं है। हर संबंध यहां पर खरीदा जा सकता है। सर्वेगुणा कांचनाश्रयन्ते' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए ऋषभदेव शर्मा के तीनों सदस्य दौलत के बल पर ही सबकुछ खरीदना जानते हैं। पार्टी जितनी महंगी होगी उतनी मशहूर भी होगी। अनुष्का ऊब चुकी है ऐसी खोखली जिंदगी से। ट्रेन दौड़ रही है और अनुष्का के मस्तिष्क में भूतकाल दौड़ रहा है। कोंकण रेलवे के कारण यात्रा भी सुखद हो गई है। सीमा मौसी अपनी कार चलाकर भानजी को लेने आती है। मौसी और उनकी बेटी डॉली दोनों अनुष्का को बहुत चाहते हैं। मयूर मौसा धंदे के कारण टूर पर गए थे। अपने मौज-मस्तीभरे स्वभाव के कारण मयूर अनुष्का के दिल में उतर जाता है। वह उसे अपनी कंपनी में नौकरी भी दिलवाता है। रोहित से परिचय भी करवाता है, घुमाने भी ले जाता है। आगे अनुष्का को अपने ही मौसा से प्रेम हो जाता है। उससे संबंध सुख भी पाती है, गर्भवती भी बनती है। कश्मीरा से चिढ़नेवाली अनुष्का, कश्मीरा के फोरवर्ड विचारों जैसी ही हरकत करती है। सीमा मौसी इस तूफान से बेखबर है। इतने में दिल्ली से मम्मा का फोन आता है कि छोटी बहन कश्मीरा का कार एक्सीडेंट हुआ है और घटनास्थल पर ही उसकी मौत हो गई है। अनुष्का दिल्ली पहुंचकर मम्मा-पापा को सांत्वना देती है। थोड़े दिनों के चलने को तैयार हो जाती है मम्मा का कहना है अब तो सबकुछ तुम्हारा ही है। घर छोड़कर क्यों जा रही हो? अनुष्का का कहना है कि जो आज तक मेरा नहीं था उस पर, अब मेरा अधिकार कैसे हो सकता है? आपने मुझे कभी अपना समझा ही नहीं । वह घर छोडकर चली जाती है।

पूरी कादंबरी में अनुष्का ही नहीं पर पूरे परिवेश में पात्रों का चरित्रचित्रण और कहानी विरोधाभासों से भरी पड़ी है। कली की पाषाण बनने की कोई सकारात्मक भूमिका तैयार नहीं होती। सामाजिक बंधनों को नकारते हुए अपने मौसा से ही प्रेम करती है। गर्भावस्था प्राप्त होती है तो अपने को शापित क्यों मानतीहै? (पृ.१७३) उसने जिस अवस्था में मयूर से शारीरिक संबंध जोड़ा उसी अवस्था से

गर्भावस्था प्राप्त हुई तब उसके बैकवर्ड विचारों का क्या हुआ? कश्मीरा की अवस्था का विरोध करते हुए अनुष्का भी वही करती है और वह भी अपने मौसा के साथ शयनसुख लेकर उसी क्षण के जीवन में जीने का फैसला करती है। साथ में मयूर से कहती है कि "मुझे किसी के पति का विभाजित रूप नहीं चाहिए।" पृ.१७२। मेरे पति पर किसी और का अधिकार भी नहीं चाहिए तो फिर किसी और के पति के साथ संबंध क्यों जोड़ना? जब अनुष्का मयूर के साथ शयनसुख लेती है तब भी वह तो सीमा मौसी का पति है। वास्तव में अनुष्का आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ी होकर भी मानसिक रूप से संतुलित नहीं रह पाती। स्वतंत्रतापूर्वक सोच नहीं पाती। उसके चित्रण में रचनाकार अनुष्का को हड़बड़ीवाली ही चित्रित कर पाई हैं। जिस फ्रेम को तोड़ने की चाह है उसी फ्रेम में घूमते जाने की चाह है। जिस बिंदु से कहानी शुरू होती है उसीके विरोधाभासी चक्रव्यूह में घूमते रहने की कथा है। शायद इसीलिए अंत में अनुष्का कलकत्ता के आश्रम में जाकर सिस्टर को अपनी कहानी सुनाती है। अपने आपको दोषी भी मानती है। अपने प्रश्नों का समाधान खोज़ नहीं पाती। इसमें कौनसी परंपरा टूटती है? खैर पाषाणकली की यही परंपरा है और यही उसकी पाषाणता भी हैं ।

कोंकणी उपन्यास यात्रा में उपरोक्त उपन्यासों के बाद 'शक्तिपात' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें अध्यात्म और वास्तविकता का चित्रण द्रष्टव्य होता है। असामान्य तत्त्वों के पास जाने की सामान्य मनुष्य की यह कहानी है। अवधूत कुडतडकार ने मराठी में कविता संग्रह और 'दिगंबरा' कादंबरी लिखी हैं । 'शक्तिपात' में दिगंबर एक ऐसा चरित्र है जो बचपन में कुत्ते से भी डरता था। जैसे जैसे वह बड़ा होता है वैसे वैसे जीवन और प्रकृति से, व्यावहारिक संबंधों से बहुत सारी बातें सीखताहै। अपने बड़े भाई की मृत्यु पर शमशान वैराग्य का भी अनुभव लेता है। पढ़ाई में आगे निकलकर भी नौकरी न मिलने पर विष खाकर मरने की भी सोचता है। गोवा मुक्ति के बाद जमींदारी के कामों में लोगों द्वारा सताए जाने पर न्यायालय के दरवाज़े के चक्कर काटता है। कानून की अंधी देवी से न्याय न मिलने पर पैसा कमाने के लिए छोटासा पुस्तकालय खोलकर, उस पर दो दो रुपए कमाता है। एक दो लड़कियों से प्यार के चक्कर भी चलाता है पर गरीब प्रेमी के हाथ में सिर्फ प्रेम बच जाता है, प्रेयसी की शादी किसी धनवान से हो जाती है। अपना ग़म भूलने वह सिगरेट फूंकने लगता है। उसका पत्रकार दोस्त हेमंत भी उसे साथ देता है। अपने दोस्त को वह कहता है कि "तुम इस जन्म में कुछ नहीं कर पाओगे, बिलकुल डरपोक हो तुम"। (पृ.१५६)

सही मानों में देखा जाए तो शक्तिपात का नायक व्यावहारिक भी नहीं बन पाता। उसकी यात्रा तो असामान्य तत्त्वों की ओर बढ़ने की और अपनी असफलता की स्वीकृति की कहानी है। साथ में गोवा मुक्ति को भी जोड़ा गया है। साथ साथ स्वतंत्र भारत की राजकीय गड़बड़ी भी बयान होती रही है। स्वातंत्र्य सैनिकों को, चोरी और स्मगिलंग करनेवालों को 'जयहिंद' वाला समझकर सताया जाता था। (पृ.५१) सही अर्थों में जो गोवा मुक्ति आंदोलन में शरीक थे वे तो अंधेरे में ही रहे। चोर स्मगलर नेता बन गए। जिन्हें अपने वोटबैंक के अलावा कुछ दिखता ही नहीं। दिगंबर ने अपने पत्रकारिता के व्यवसाय में एक बार नेता से प्रश्न पूछे थे पर नेता जवाब नहीं दे पाए थे। हमारी कथा का नायक खुद्दार है पर किस डोर को कब खींचना है, कितना खींचना है यह बात उसकी समझ में कभी आई ही नहीं। पैसेवालें दूसरों को उल्लू बनाते हैं और उसे बिजनैस कहते हैं। नायक तो बस

"दिगंबर दिगंबरा...श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा" करते करते सामान्य से असामान्य तत्त्वों की ओर प्रयाण करता है। दत्त प्रभु की छाया में डोलता रहता है।

उसकी भक्ति में श्रद्धा है अंधश्रद्धा नहीं है। मठ, मंदिरों में गलत प्रवृत्तियों चल रही हैं उस पर उंगली उठाने का काम वह करता है। कैवल्यानंद स्वामी के मठ में जब उसे पता लगता है कि स्वामीजी ने रखैल से संबंध रखा है (पृ.१८७) तो दिगंबर सोचने लगता है कि अगर मैंने ध्यान नहीं रखा तो मैं भी ऐसे ही अपनी राह भूल सकता हूं। (पृ१८७) सहारा एक ही दत्त गुरूका। गुळवणी महाराज द्वारा रचित पद -

'शक्तिपाताचा महामेरू। बहुत जनासी आधारू,
ब्रह्मस्थितिचा निर्धारू। श्रीमंत योगी।"

अर्थात समस्त संसार की मूलशक्ति चिदशक्ति है। हर मनुष्य में, अंश रूप में वह विद्यमान है। अनंत शक्ति का यह अंश स्वयं संवेद्य है और उसका अनुभव सिर्फ योग मार्ग से ही संभव है। सिर्फ सदगुरू ही शक्ति को अपने योग्य शिष्य में संक्रमित कर सकता है। वाद में साधक की अपनी आत्मिक शक्ति जागृत कर पाता है।

लेखक अवधूत कुड़तड़कार अपने समाज की बुराइयों को भी उजागर करते हैं। जातिप्रथा, देवदासी प्रथा, बेईमानी, सामान्य मनुष्य की बेबसता पर भी दृष्टि डालने का प्रयत्न किया गया है। आज तक कोंकणी का रचनाकार दूसरों के समाज में क्या हो रहा है यह तो दर्शाता था पर अपने समाज के बारे में बोलने का साहस 'कार्मेलीन', 'भोगदंड', 'पाशाणकळी' के रचनाकारों के पास नहीं है। 'काळीगंगा' में थोड़ा बहुत प्रयत्न हुआ है पर 'शक्तिपात' में यह प्रयत्न ज्यादा सराहनीय रूप से हुआ है। उदाहरण के तौर पर जातिप्रथा के बारे में डॉक्टर फिजीशियन के विचार देखें - हिंदी भावार्थ -

दिगंवर तुम्हें भी म्हापसा की हवा लग गई क्या? पहले तुम चमार को घर ले आए, अब क्रिश्चियन को लाए हो। अरे भाई, तुम्हें सब ऐसे ही दोस्त मिलते हैं? यह ब्राह्मणों का घर है। वास्तुदेवता को यह सब नहीं चलेगा। दो दिन के अंदर ही तुम्हें यह कमरा खाली करना होगा। (पृ.७६)

दिगंबर सोचता है यह डॉक्टर अपने पेशंटस की जाति पूछकर दवा देता हैं? क्या रक्त की जाँच करने पर पता चलेगा कि यह ब्राह्मण का है या हरिजन का? (पृ.७६) देवदासी की प्रथा के बारे में भी लेखक सोचता है कि हम देवदासी की लड़की को गलत निगाहों से क्यों देखते हैं? उसका गुनाह यही है कि वह देवदासी की लड़की है? समाज के बदलते संदर्भों में भी बहुत सारे संबंधों पर प्रश्नार्थ चिह्न लगते जा रहे हैं। साली और बहनोई के संबंधों को लेकर भी कहीं कहीं खिलवाड़ चल रहा है। उसका चित्रण भी पृ. ६२ पर किया गया है। जहां जहां अनुचित दिखाई दिया उस पर सजग रचनाकार ने उन तत्वों को उजागर करने की दृष्टि दृष्टव्य होती है। अंत में हमारा नायक गुरू नाम स्मरण करते करते ध्यान में बैठता है -

"अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन् चराचरम्।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः" पृ.१९५

प्रार्थना करते करते ही भौतिक सुखों को बिसारकर आंतरिक संसार की महाशक्ति के प्रकाश को देखता रहता है...अपने आपको दत्तात्रेय की इच्छा पर छोड़ देता है।

'शक्तिपात' में कोंकणी, कन्नड़, मराठी, हिंदी भाषा के शब्द आए हैं साथ साथ में पुर्तगाली भाषा के शब्द भी हैं। रेंदाक - भाड़ेपर, आमीग - मित्र, दोतोर- डॉक्टर, केस्तांवा - झगड़ा, रेकाद - संदेश, काबार - खत्म, सेग्रेद - सिक्रेट, आदोगाद - वकील, पात्रांव - मालिक ये सब उसी भाषा के शब्द हैं। उसी तरह कन्नड़ भाषा के शब्द भी हैं जैसे नीर बेकू - पानी, निन्ना उटा माडती - खाना तैयार है?। 'उटा' शब्दा का अर्थ है गेहूं के आटे में गरम पानी और नमक मिलाकर बनाए गए छोटे छोटे गोले जिसे मजदूर लोग कच्चा ही खाते हैं। मालवणी मराठी भाषा का प्रभाव पृ. ३७ से लेकर ४१ तक देखा जा सकता है। अध्यात्मिक शब्दावली की भरमार भी

स्वाभाविक ही लगती है क्योंकि शीर्षक ही उस बात का संकेत करता है। 'कार्मेलीन' से लेकर 'शक्तिपात' तक कोंकणी उपन्यासों में विविध भाषा प्रयोग विषय और पात्र अनुरूप हुए ही हैं। जिसका ज़िक्र भी प्रसंगानुरूप किया ही है।

'शक्तिपात' अंतर्गत कहानी में एक बात खटकती है वह यह कि हमारा नायक उचित संघर्ष नहीं करता मुश्किलों का सामना करते हुए संघर्ष न किया जाए तो परिणाम सकारात्मक नहीं हो सकता। पहले कर्मवाद बाद में दैववाद आना चाहिए तभी व्यक्ति संघर्ष, वर्ग संघर्ष करना मनुष्य का ध्येय होना चाहिए। दिगंबर का चरित्र चित्रण जिस तरह से हुआ है, उसमें वह दैववाद की ओर पहले झुकता है, बाद में कर्मवाद की ओर जाता है तो अध्यात्म की ओर उसका झुकाव पलायन लगता है। खैर इतना कुछ होते हुए भी कोंकणी उपन्यासों में अध्यात्म और वास्तविकता की अलग पहचान बनाने में 'शक्तिपात' अपना योगदान देता ही है।

'युग सांवार' उपन्यास के लेखक महाबळेश्वर सैल हैं। हिंदी में इसे युगविपत्ति नाम दे सकते हैं। इस उपन्यास में लेखक गोवा के राजकीय इतिहास को सामाजिक परिवेश के साथ जोड़कर उसे सामाजीकरण ही नहीं संस्कृतिकरण के माध्यम से गूंथते हुए औपनिवेशिक समस्याओं को तथा धर्मांतरण प्रक्रिया के अंतर्गत मानवीय अस्तित्व का आर्थिक संघर्ष प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। सत्ताधीश हमेशा खराब नहीं होता और अपना समाज हमेशा सही नहीं होता। इस बात का चिंतन देते हुए लेखक पचास प्रतिशत () निऔपनिवेशिक भी होता है। इस उपन्यास में अपने युग का महासंकट बंया होता है, जहां युगांतकारी परिवर्तन राज्यसत्ता के साथ साथ धर्मांतरण प्रक्रिया से गुज़रते हुए समाज को नए विचारों के माध्यम से नया समाज भी देता है। उसी समाज को, लेखक मानवीय संस्कृति के संदर्भ में रखने का प्रयास भी करता है। गोवा के समाज में जो उथलपुथल मची, दो संस्कृतियों का स्थापित अस्तित्व, शासकों का शासन, समाज में संस्कृतिकरण संकरण, उसके प्रश्न, समाज में आते बदलाव इनका लेखाजोखा लिया गया है।

'वादळ आनी वारे' (बादल और हवा) उपन्यास में रचनाकार बलवंत वा कोस्ता की फादर बनने की पूरी कहानी बुनी गई है। उसके रास्ते में मोह, माया, सांसारिक बंधन आदि काले बादल और हवा के तूफान रूप में आकर उभरते रहते हैं...बळवंत अपनी राह चलता रहता है। चर्च, खिस्ती परिवार, दुखी लोगों की खातिर मुसीबतें पार करता हुआ वह अपनी मंजिल तय करता है। प्यार का संदेश देता है। मनुष्यों को चाहिए कि मनुष्यों के लिए जिएं। मनुष्य जीवन संवारने में ही उसकी गरिमा है। क्रोध के बादल पार करते ही शांत हवा बह सकती है। अलग अलग धर्मों के लोगों के बीच शांति और प्यार की हवा बहते ही हमारा देश और समृद्ध होगा। अपने पादरीपन के जीवन में यही संदेश वह देता रहा। फा. आंतोनिओ पेरैरा ने इस उपन्यास को पहले रोमी लिपि में लिखा था और दिलीप बोरकार ने इसे देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण करके गोवा कोंकणी अकादेमी की आर्थिक सहायता लेकर बिम्ब प्रकाशन से प्रकाशित किया है।

'पोको' (पॉको) : एक ऐसे कमज़ोर बच्चे की कहानी है, जो बड़ा होते ही नर्सरी, के. जी. में जाने के बजाय प्रकृति के साथ साथ बड़ा होता है। प्रकृति से बहुत कुछ प्राप्त करता है। बाद में स्कूल भी जाता है, अपने बलबूते पर कॉलेज की पढ़ाई करने के बाद एम.ए. पास करता है खेतों में काम करना, दुकान के कोने में पड़े रहना, हॉटेल में काम करना उसकी नियति बन गई है। 'पोको' शब्द का अर्थ ही पोला या खोखला होता है। इसी पोलेपन की मजबूती में बदलकर अपने जीवन की सरगम को संगीत में बदलकर पोको (पॉकॉ) हर चक्र को तोड़ता है, अपने मकाम पर पहुंचता है, यही उसकी सफलता भी है।

'दिका' : (दिशा) उपन्यास में गोवा की सामाजिक समस्याओं पर सोचा गया है। हमारे देश में अनेक धर्म अनेक समाज, अनेक संस्कृति के अपने अपने दायरे भी हैं। फिर भी यह एकता का, भारतीयता का एहसास दिलाती है। जातिप्रथा से ऊपर उठना और मानवीय चिंतन की ओर अग्रसर होना यही उसका लक्ष्य है। 'दिशा' का दिशा निर्देश समाज को समाज प्रेमियों को सोचने पर मजबूर करता है। लेखक बदलाव का शुभारंभ अपने ही घर और परिवार से करता है। दिशा परिवर्तन का यह संदेश जीवन के साथ साथ जीवन के हर क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। अब तक का लेख काफी लंबा हो चुका है। बाकी उपन्यासों के बारे में पाठक उसे कोंकणी में पढ़ें और तय करें।

राष्ट्रीय साहित्य प्रवाह में जब कोंकणी साहित्य पर सोचा जाता है तब बहुत सारे शैलीगत, कथ्यगत, विषयगत, पहलुओं में कोंकणी साहित्य, तुलनात्मक रूप में पिछड़ा हुआ ही लगता है। फिर भी अपने विकासात्मक रूप में वह आगे बढ़ ही रहा है। सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक और मनोविश्लेषणात्मक, बालमानस पर आधारित उपन्यास, पूर्णतया रूप में जिसे वैज्ञानिक गतिविधियों का उपन्यास कहते हैं वैसे विषयों पर अभी कोंकणी में कार्य हुआ ही नहीं है। हिंदी, मराठी, कन्नड, बंगाली भाषा की तुलना में कोंकणी उपन्यास अभी बाल्यावस्था में ही है। गोवा की नागरी लिपि के कोंकणी साहित्य के लिए नया वातायन जरूरी है। 'अब साहित्य आम आदमी के जीवन से जुड़ गया है; और आम आदमी के जीवन में महाकाव्यात्मक औदात्य की स्थितियाँ, कर्म और अनुभव सामान्यतः सुलभ नहीं हैं" [३] हिंदी के लिए तो यह बात सही है, पर वह 'मध्यम वर्ग' जो कि रचनाकार और आस्वादक दोनों का उत्तरदायित्व निभाता है, उस मध्यम वर्ग का उद्भव और विकास गोवा की कोंकणी भाषा में, दूसरी भारतीय भाषाओं की तुलना में कम ही हुआ है। इसलिए विविध प्रकार के उपन्यास ही उपलब्ध नहीं हैं, तो फिर 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' की मंजिल गोवा की कोंकणी के लिए अभी बहुत ही दूर है।

कोंकणी उपन्यास जो देवनागरी लिपि में लिखे गए हैं उनकी जानकारी के साथ इस तथ्य को भी ध्यान में रखना होगा कि गोवा में रोमी लिपि में भी उपन्यास लिखे गए हैं। सन १९११ में ब्रुन द सौज़ नाम के लेखक ने 'किरिस्तांव घराबो' (क्रिश्चियन कुटुंब) नाम का उपन्यास लिखा था। उसी समय में आलेयशु जुज़े फ्रांसिश्कु, एफ. एक्स, इनासियो काम्पुश, आंतोनियु द क्रुज़, जुआंव कारवालो आदि लेखक भी इसी परंपरा में अपना उपन्यास लेखन कर रहे थे हालाँकि इन सब ने ब्रुन द सौज़ की यथार्थ चित्रण शैली का पालन नहीं किया। इनकी लेखन शैली में कल्पना के रंग अधिक मात्रा में रहते थे। आज भी गोवा में रोमी लिपि में साहित्य की रचना हो रही है।

❖ ❖ ❖